

^Hke*

Hkkx &ö

usk ghv ^v/š vlg uska okys eulj; ds ijs 'kjlifjd vlg ekufi d thou
ej cšvr ^vrj* gSA

^v/k* plgs vi uh vll; Kku bflnz ka ds l gkjs bl txr dks &

le>us

cu>us

tkpus

tkuus

vankk yxkus

fu'p; djus

;kst uk cukus

Qš yk djus

thou&lš cukus

de&fØ; k djus

dh dks'k'k djrk gš ijr qfQj Hkh muds 'kjlifjd] ekufi d vlg /kfezd eMy
dk Kku Åijh l k] v/yk] Vkg ek=k] vankt ek=k] xyr] , oa Hke&e; h gh gš
ftl ds vk/kj ij mudk l kjk thou 0; rhr gkšk gSA

;fn , ds vj/s dks dgha ^usk&T; kšr* fey tk, rks og gšku gkšk fd ml
ds dFYir fd, gq l ka kfjd vankt} le>] Kku fu'p;] p; u] vlg Qš yš
vlfy; r (reality) l sfcYdy foy{.k] foijhr] dM+, oa Hke&Hkyko gh
Flk A og nfu; k dks **vl yh lo: i** enš[k&nš[k dj gšku , oa vk'p; pfd r
gkšk A

;g n"Vghu ^Hke&Hkylo* vj/ka ds gj &

[; ky

l kpuh

fu'p;
J¼k
Hkkouk
del
fØ;k
/e/

vFkok **thou ds gj i{k ea iØRr gkrk gS A**

vj/k dk ^Hke&Hkyko* 'kjhj ds ,d **vx ds vHko Is mRiUu gkrk gS**
tho dk ekuf d ^Hke&Hkyko* **vge Is mRiUu gvk gS A**
usk ghu vj/k dk**Ø&dkØ** gh gkrk gS A

ijrq ekuf d ^Hke&Hkyko* rks **lkjs ldkj** vFkok nfu;k dkj **Hm&ir**
dh rjg fpidk gvk gS A

vj/ks dk ^Hke&Hkyko* rks muds ,d **thou rd lfer gS** efr ds
ckn vxys tle ea **lkf ugha tkrk A**

ijrqekuf d ^vKkurk* rks dbZ tleka l sgekjs l kfk fpi dh **gpZgsvj** ejus
ds ckn Hkh vxys tleka ea l kfk gh fpi dh jgsxh A

bl rjg vj/k ds nqk&Dysk rks ,d tle eagh [kRe gks tk, xs A

ijrqekuf d vKkurk ds ^Hke&Hkyko* Is mRiUu nqk&dysk rks gekjts
eR;q ds ckn **vxys tleka ea Hkh lkf gh tk, xs** vj tho ds ^Dysk**dk**
dkØZ vUr ugha vk, xk A

rq/gg Hkys fl tfe tfe ejns fru dns u ppfu glos AA(i- ööü)

vfud tku Hkvevs Hke Hhrfj lqkfg ukgh ijodk js AA(i- púy)

vfud tur Hkes tku ekg AA

gfj fleju fcuqujfd ikfg AA (i- úüöy)

vj/s viuh ^del* dksfdlh usk okys dh l gk; rk ysdj viuh efg dyla
dksfdlh gn rd de dj l drsgS A

ijrŋ ekufld vKlurk ds ^Hle&x<† ea dkbz fdlh dh l gk; rk ugha
 dj l drk] D; kfd bl ekufld v/ xŋkj ds v/ j & [krs ea rls l kjs
 tho gh Qj s gq gŋ A

tc bl v/ j [krs ds Hle&x<+ ds vnj l kjs tho gh Hle&Hlyto
 ea my>s gŋ rls dks fdlh dks l gh ^vRe&izk'k* dh jkg crk
 l drk gŋ \

ukud vŋk gth dS nls jkgS l Hkl q egk, l kfs AA (i: ūpū)

अंधा आगू जे थीऐ किय पाधरु जाणै ॥

आपि मुसै मति होछिये किय राहु पछाणै ॥

(पृ. ७६१)

अंधे कै राहि दसिये अंधा होइ सु जाइ ॥

होइ सुजाखा नानका सो किय उझड़ि पाइ ॥

(पृ. ६५४)

अन्हा आगू जे थीऐ सभु साथु मुहावै ॥

(वा. भा. गु. ३५ / २)

bl rjg tks ^/e/ i p k j * g k j g k g ŋ l c bl ^Hle&Hlyto* ds fnekh
 Klu ds [k[lys vt/lj ij gŋ j g k g ŋ A ; gh dkj . k g ŋ fd brus i k B] i ut k]
 Hktu] HkfDr] de&d[ll] l x Bu] l R l x l exelŋ dhr ū v [kVŋ] d f k & 0 ; k [; ku]
 /kfezd y[k] /kfezd i j p ŋ , oa /kfezd i p k j ds g k r s g q Hkŋ ^t x r * bl ^Hle
 x < † ds v / d l j [krs ea l s fudy ugha l dk A v f i r q c l o t m brus
 ^/ekŋ v k ŋ /e/ i p k j d ŋ ^t h o * dh ekufld v k ŋ v è ; k f r e d
 g k y r f x j r h t k r h g ŋ v k ŋ ekufld v o x q k ? k v u s dh v i ŋ k c < f s t k
 j g s g ŋ A

v/ s viuh 'kijfjd deh dks egl ŋ djrs gŋ , oa i Hkq dh bPnk l e > dj
 l cz l s 'k f u r i n z d viuk d f B u t h o u 0 ; r h r d j r s g ŋ A

ijrŋ tho dks viuh ekufld vKlurk ds ^Hle&Hlyto* ds fo" k;
 ea &

irk gh ugha

l ŋ gh ugha

xkŋ gh ugha djrs

egl ŋ gh ugha djrs

ci j o k g ŋ

u tkuus dh vo'; drk gh irhr gksh gS

pkgs xq vlt vorkjlt l rlt HKDrkt egki q "kka us viuh&viuh ck.kh vlt
min'skka ea crk; k gSfd&

1- lkjk tx ^Hke&Hkyko* gh gS A

2- bl Hke x<+ ds nq[lt&dys'kka dk Li"V C;ku gS tks gekjs
thou ds gj i{k ds vultto ea vkr's gS A

3- bl nq[knk; h ^Hke&x<+ ea l s fudyus dh l Pph , oa i Ddh ; fDr , oa
Li"V lk/u Hkh crk, x, gS A ijarq fQj Hkh gea bu nsh; min'skka ij
Hkjl k ugh vkr't D; kid ge vius ^Hke* dh vKkurk dks gh ^lp*
ekudj cBs gS A bu min'skka dks ge Ajh eu l si<&l q dj vius&vki
dks >Bh r l Yyh nsnr's gS ; k budh rjQ l s tku&cw dj epys ; k <hB gq
gS A

लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ बहम बीचार ॥

जिउ कासी उपदेशु होइ मानस मरती बार ॥

(पृ ३३५)

हरि कथा हरि जस साधसंगति सिउ

इकु मुहतु न इहु मनु लाइओ ॥

(पृ ७१२)

माधवे किआ कहीऐ भ्रम ऐसा ॥

जैसा मानीऐ होइ न तैसा ॥

(पृ ६५७)

यह मानसिक अज्ञानता का 'भ्रम - भुलाव', समस्त त्रि - गुणी मायिकी
मंडल में हर जीव के -

शारीरिक

मानसिक

आर्थिक

विद्यक

भाईचारिक

वैज्ञानिक

धार्मिक

अध्यात्मिक

जीवन में गुप्त रूप में प्रबिष्ट और प्रवृत्त हैं ।

हम इस मानसिक 'भ्रम-भुलाव' में अनेक जन्मों से पलच-पलच कर दुखी होते रहे हैं और अभी भी दुखी हो रहे हैं। यह 'भ्रम-भुलाव' मरने के बाद भी हमारे अगले जन्मों में साथ ही जाएगा और इसी तरह हम -

पलचि पलचि सगली मुई झूठे धंधे मोहु ॥ (पृ १३३)

के न समाप्त होने वाले दुखदाई 'चक्कर' में फँस कर दुखी होते रहेंगे।

जब तक हमारे अंदर नाम का 'आत्म-प्रकाश' नहीं होता, और यह मानसिक 'भ्रम का अंडा' नहीं फूटता, हम इसी 'भ्रम-गढ़' के अँधकार खाते में ही विचरण करते रहेंगे।

फूटो आँडा भरम का मनहि भइओ परगासु ॥

काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बंदि खलासु ॥

(पृ १००२)

यह मानसिक 'भ्रम-भुलाव' ही हमें अपने आन्तरिक भ्रममयी अँधकार को 'महसूस' नहीं होने देता। इस लिए इस के इलाज की ज़रूरत ही नहीं प्रतीत होती।

ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ॥

कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ ॥

(पृ - ६२)

जिस तरह जीवों के मनो में धर्म, पाठ, पूजा, कर्म-कांड, धार्मिक प्रचार और परमात्मा के विषय में अत्यंत भ्रम-भुलाव प्रवृत्त हैं, उसी तरह हमारे -

eu

fpr

cnf/

l kp

fu' p; ka

J¼k

Hkkouk

del

fØ;k

ea Hkh ; gh 'Hk&e; l' ekf; dh v/dlj dk cky&cky vlg 0; ogkj gs

gekjh fnelxh ekuf l d &

l ; k u i a

mDfr ; k

; fDr ; k

fo | k

fo | d < kpk

foKku

vk/fud vfo"dkj

uohu lH ; rk

Hkh blh ekf; dh ^Hke&Hkyko* dh vKkurk ds ^v_/dkj* l s gh
mRlUu gsrh vlg i QfYr gsrh gā A

, dh ekf; dh Hke&Hkyko dh fo | d flxfj; ka dh ikfr; ka ij ge xoz
djrs gā vlg vdlm; fQjrs gā rFlk Hky&Hkn] fonoku vlg vQykrw
dgykdj vius vge dh vKkurk dls vlg c<k jgs gā A

bl Hke&Hkyko ea ge vius ^vRe&rr~ vFkok ^uke* dh jkkuh l s
vlg nj tk jgs gā A

i flM+ i flM+ ywfg cknqo [kk. kfg

fefy ekvbk l jfr xokbz AA

(i: uūyū)

i flM+ i flM+ Hkywfg plk/k [kkfg AA

cgrrq fl vk.ki vko fg tlgf AA

(i: ööö)

लिखि लिखि पड़िआ ॥ तेता कड़िआ ॥

(पृ ४६७)

इकि पाधे पंडित मिसर कहावहि ॥

दुबिधा jkrsegyqu i lofg AA

(i: öüp)

gekjsekuf l d vlg ekf; dh thou dsfy, bu fo | d vlg oKkfrud i <kbz ka
dh Hkh vto'; drk gā D; kafd budsnekjk l d k vlg foykl dsu, &u, l k/u
i klr gksjgrsgāA

परंतु इन विद्यक और वैज्ञानिक पढ़ाईयों द्वारा प्राप्त सुख और विलास इसी जन्म
तक सीमित है । इन सुखों में प्रवृत्त और मस्त होकर, सदैवीय सुखों के स्रोत,

अपने परम 'आत्म - तत्' अथवा 'नाम', से बेपरवाह और विमुख होना ही हमारा -
मानसिक भ्रम भुलाव है ।

पड़ि पड़ि पंडित बेद वखाणहि माइआ मोह सुआइ ॥
दूजै भाइ हरि नामु विसारिआ मन मूरख मिलै सजाइ ॥ (पृ ८५)

पड़ि वादु वखाणहि सिरि मारे जमाकाला ॥
ततु न चीनहि बंनहि पंड पराला ॥ (पृ २३०-३१)

पड़णा गुड़णा संसार की कार है अंदरि तृसना विकार ॥
हउमै विधि सभि पड़ि थके दूजै भाइ खुआर ॥ (पृ ६५०)

पड़हि मनमुख पर बिधि नही जाना ॥
नामु न बूझहि भरमि भुलाना ॥ (पृ १०३२)

परंतु हम अपने 'आत्म - तत्' अथवा नाम के प्रकाश रूपी 'तत् - ज्ञान' को पूर्णतया ही भूल गए हैं ।

इस 'तत् - ज्ञान' या 'अनुभव प्रकाश' के विषय में आदि से ही गुरुओं - अवतारों ने हमें आत्मिक उपदेश दिये थे - परंतु हम इन सच्चे - पवित्र उपदेशों का पाठ कर लेते हैं और भ्रम - मयी 'बुद्धि' द्वारा खोखली व्याख्या करके भले - भद्र बनकर घमन्ड में चूर रहते हैं । हमें यह भ्रम है कि यह गुरुबाणी के सच्चे - पवित्र उपदेश हमारे ऊपर लागू नहीं होते ! शायद किसी और अज्ञानी के लिए ही कहे गए होंगे ।

सच तो यह है कि यदि हमारे जीवन के व्यवहार को गौर से परखा जाए तो सिद्ध होगा कि -

हमारा अहम ही हमारा	- 'प्रभु' है !
'मैं - मेरी' की पूर्ति करनी ही हमारी	- पूजा है !
'अहम' की गुलामी करनी ही हमारा	- धर्म है !
मायिकी भ्रम - भुलाव में खचित होना ही हमारा	- 'जीवन आदेश' है !

मेरी मेरी करते जनमु गइओ ॥ (पृ ४७६)

हउ मेरा जगु पलचि रहिआ भाई कोइ न सिक ही केरा ॥ (पृ ६०२)

मेरी मेरी धारि बंधनि बंधिआ ॥ (पृ ७६१)

साकत मूड माइआ के बधिक विचि माइआ फिरहि फिरंदे ॥
तृसना जलत किरत के बाधे जिउ तेली बलद भवंदे ॥ (पृ ८००)

सो संचै जो होछी बात ॥

माइआ मोहिआ टेढउ जात ॥ (पृ ८६२)

परंतु गुरबाणी तो हमारे इन 'भ्रम-भुलाव' के गलत निश्चयों के विपरीत हमें यूँ ताड़ना करती है -

कूडु राजा कूडु परजा कूडु सभु संसार ॥

कूडु मंडप कूडु माड़ी कूडु बैसणहार ॥

कूडु सुइना कूडु रुपा कूडु पैणहार ॥

कूडु काइआ कूडु कपडु कूडु अपार ॥

कूडु मीआ कूडु बीबी स्वपि होए रवार ॥

कूडु कूडै नेहु लगा विसरिआ करतार ॥ (पृ ४६८)

झूठी दुनिआ लगि न आपु वजाईए ॥ (पृ ४८८)

झूठा तनु साचा करि मानिओ जिउ सुपना रैनाई ॥ (पृ २१६)

न किस का पूतु न किस की माई ॥

झूठै मोहि भरमि भुलाई ॥ (पृ ३५७)

सुणि बावरे तु काए देखि भुलाना ॥

सुणि बावरे नेहु कूडा लाइओ कुसंभ रंगाना ॥ (पृ ७७७)

हमारे ऐसे कूड, खोरवले, दुखदायी, जीवन का मूल कारण यह है कि हम जन्म-जन्मों से इस मायिकी 'भ्रम-भुलाव' में जीते, विचरण करते और मरते आए हैं, जिस कारण यह कूड माया का 'भ्रम-भुलाव' ही हमारा जीवन आधार या धर्म बन चुका है। इसी कारण मायिकी 'भ्रम-गढ़' को समझने, बूझने, जानने, पहचानने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती और इसमें से निकलने का ख्याल या प्रयत्न तो क्या करना था !

यदि हमारा व्यापक मायिकी 'भ्रम-मयी' 'निश्चय' सही और सुखदायी होता तो इतने धर्म और धार्मिक प्रचार के बावजूद - 'इन्सानियत' -

इत्तफाक

मेल मिलाप

प्यार

सेवा

परोपकार
हमदर्दी
मैत्री भाव
शांति
दया
एकता
क्षमा
धैर्य
नम्रता
सत्
संतोष

आदि, दैवीय गुणों से 'वंचित' न होती ।

बिजली के करंट (electric current) के विषय में -

सुना - सुनाया
पढ़ - पढ़या
सीखा - सिखलाया
जान - बूझा
किताबी

ज्ञान या जानकारी -

ऊपरी सी
खोखली
अधूरी
टोह मात्र
अंदाजा

दिमागी कसरत

ही है, जो हमारे दिमागी ज्ञान इन्द्रियों तक सीमित है ।

इस दिमागी ज्ञान के मुकाबले, बिजली के करंट का शारीरिक 'स्पर्श' होने पर जो निजी अनुभव (personal experience) का ज्ञान होता है, वह दिमागी ज्ञान से विलक्षण और कुछ और ही प्रतीत होगा ।

यह करंट का 'निजी अनुभव' ही 'बिजली' का वास्तविक और मूल 'तत्-ज्ञान' है ।

इस 'निजी अनुभव' के बिना हमारा सारा ज्ञान सिद्धांतिक, इलमी, कल्पित किया हुआ (theory), विचारात्मिक, ख्याली और दिमागी कसरत ही है ।

इस मनोकल्पित ख्याली जानकारी को, बिजली के करंट का वास्तविक 'तत्-ज्ञान' समझना ही मानसिक 'भ्रम-भुलाव' है ।

ठीक इसी तरह प्रकाश रूप 'नाम', अथवा 'आत्तिक तत्-ज्ञान' को, दिमागी 'विषय' ही समझना और दिमागी ज्ञान तक सीमित रखना भी हमारा मानसिक 'भ्रम-भुलाव ही है ।

ऐसे खोखले, अधूरे, मनोकल्पित दिमागी धार्मिक ज्ञान का प्रचार भी, हमारे मायिकी 'भ्रम-भुलाव' के 'भ्रम-गढ़' तक सीमित रहता है, जो हमें 'आत्म-तत्' 'नाम' का -

तत्-ज्ञान

झलक

आत्म-प्रकाश

आत्म छोह

आत्म रस

आत्म रंग

आत्म विस्माद

सहज समाधि

के, अन्तर-आत्मा में 'निजी अनुभव' नहीं करा सकता ।

यही कारण है कि अन्नत -

धर्म

धर्म ग्रंथ

धर्म मंदिर

पाठ

पूजा

जन्म

त्प
कर्म
क्रिया
योग
साधना
प्रयत्न

के बावजूद, संसार की मानसिक और आध्यात्मिक अवस्था दिन-प्रतिदिन गिरती जाती है ।

अंधकार सुखि कबहि न सोई है ॥

राजा रंकु बोज मिलि रोई है ॥

(पृ ३२५)

दूसरे शब्दों में हमारा दिमागी धार्मिक 'ज्ञान' और उसका प्रचार भी हमारे मायिकी -

'भ्रम भुलाव'

के दायरे तक सीमित है, जिसकी 'आत्मिक-तत्' अथवा 'नाम-प्रकाश' तक पहुँच नहीं हैं ।

हमारे दिमागी अन्दाजे और कुकड़ उडारियाँ हमें मायिकी 'अँधकार-मंडल' की 'सीमा' तक ही पहुँचा सकती हैं । इस से दूर आत्मिक देश अथवा आत्म-प्रकाश की 'झलकियाँ' नहीं दिखा सकती । हम इन दिमागी उड़ानों की प्राप्तियों को 'कविता' कहकर फूले नहीं समाते और इसी को आत्मिक 'प्राप्ति' समझे हुए हैं ।

इन कवियों के सूक्ष्म, तीक्ष्ण, कटाक्षमयी मनोभावों की उड़ानों को 'आत्म-प्रकाश' का 'जलवा' समझना भी हमारी मानसिक अज्ञानता का -

'भ्रम-भुलाव' ही है ।

उदाहरण के रूप में 'भाई नंद लाल जी' चोटी के विद्वान एवं 'कवि' थे- परंतु उनकी तीक्ष्ण मानसिक उड़ाने मायिकी मंडल तक 'सीमित' थी । परंतु जब उन पर दसवें पातशाह गुरू गोविन्द सिंह जी की कटाक्षमयी ईश्वरीय 'नदरि-करम' हुई, तो उनके मन पर आत्म प्रकाश का 'लिशकारा' लगा और उनकी विदवता और 'कविता'- 'नाम रंग' में रंग गई और उनकी लेखनियों में आत्मिक 'चमक' की झलकें प्रकाश हो गई ।

इसी तरह 'राग' अथवा 'नाद' के भी दो स्वरूप हैं -

1. बाहरी राग जो 'बुद्धि' द्वारा सीखा - सिखलाया जाता है और साज़ों पर सुर-ताल से बजाया जाता है ।

2. अनुभवी 'ईश्वरीय-राग' अथवा 'अनहद धुनि' है, जो 'जल तल दिसा विसा होइ फैलिओ अनुराग' अनुसार, सारी सृष्टि में लगातार एक रस रवि रही परिपूर्ण है और अनेक मनोभावों, रूपों, तरंगों, थरथराहट, लहरों द्वारा 'चुप बोली' में गूँज रही है ।

अणमडिआ मंदलु बाजै ॥

बिनु सावण घनहरु गाजै ॥

(पृ. ६५७)

विणु वजाई किंगुरी वाजै जोगी सा किंगुरी वजाइ ॥ (पृ. ६०६)

अनहद धुनी सद वजदे उनमनि हरि लिव लाइ ॥ (पृ. ६१)

'ईश्वरीय राग' या 'अनहद धुनि' अति सूक्ष्म होने कारण, हमारी बुद्धि की सीमा से बाहर है । सूक्ष्म वस्तु को पकड़ने के लिए, सूक्ष्म बुद्धि या अनुभव की आवश्यकता है । 'बाह्य राग' की सुर, लय, ताल को सुनने या 'पकड़ने' की भी हर एक में योग्यता नहीं होती । बहुत से लोग तो राग की बाह्य 'दूँ-टां' सुनकर ही वाह-वाह कर देते हैं ।

इस 'अनहद धुनि' को सुनने और अनुभव करने के लिए जिज्ञासु को त्रि गुणी मायिकी मंडल से ऊँचा अठकर अपनी दैवीय-भावनाओं, रूप, तरंगों को 'ईश्वरीय नाद' की तरंगों (vibrations) के साथ, एक सुर (in-tune) करना पड़ेगा ।

केवल बाह्य मायिकी मंडल के 'राग' द्वारा यह 'अनहद धुनि' सुनी नहीं जा सकती । अनुभवी आत्मिक 'तत्-ज्ञान' अथवा 'नाम' अथवा 'शब्द' द्वारा ही इस 'अनहद धुनि' का अनुभव हो सकता है ।

अनहत बाणी गुर सबदि जाणी हरि नामु हरि रसु भोगी ॥ (पृ. ६२१)

अनहद धुनि वाजहि नित वाजे गाई सतिगुर बाणी ॥ (पृ. ४४२)

अनहदो अनहदु वाजै रूण झुणकारे राम ॥

मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम ॥

(पृ. ४३६)

हरि नामु सलाहिन नामु मनि नामि रहनि लिव लाइ ॥

अनहद धुनी दरि वजदे दरि सचै सोभा पाइ ॥

(पृ. ४२)

सहजे अनहत सबद वजाइआ ॥

सहजे रूण झुणकारू सुहाइआ ॥

(पृ २३७)

माई री पेखि रही बिसमाद ॥

अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के सूद ॥ (पृ १२२६)

परंतु बाह्य सीखे-सिखाए दिमागी 'राग' को- अनुभवी' अनहद धुनि' समझना ही, हमारी मानसिक अज्ञानता का -

'भ्रम-भुलाव' है ।

इसी तरह 'धर्म' या 'मजहब'-परमेश्वर से भूले और विछुड़े हुए जीवों को पुनः अपने केंद्र 'परमेश्वर' की याद कराने, और उस की ओर प्रेरित करने के लिए रचे गए थे और इस तरह 'प्रभु-मिलाप' का साधन हैं ।

परंतु हम धर्म को -

मायिकी जरूरतों की पूर्ति के लिए,

मानसिक प्राप्तियों के लिए,

सुख विलास की प्राप्ति के लिए,

दुख कलेशों से बचने के लिए,

मानसिक शांति के लिए,

अपने पाप ढकने के लिए,

यम की सज़ा से बचने के लिए,

'धार्मिक' कहलवाने के लिए,

'वाह-वाह' करवाने के लिए,

'लोक-दिखलावे' के लिए,

दिमागी 'वाद-विवाद' के लिए,

दिमागी शुगल के लिए,

तथा कथित धार्मिक ठाठ-बाठ रचाने के लिए,

चेले-चाटड़े बनाने के लिए,

सौदेबाज़ी के लिए,

आवागमन में से निकलने के लिए,

मुक्ति की प्राप्ति के लिए,

आदि, मायिकी मनोरथों के लिए ही अपनाते हैं और इस धार्मिक अज्ञानता में ही गलतान हो कर भले-भद्र बने रहते हैं ।

कबीर काम परे हरि सिमरीऐ ऐसा सिमरहु नित ॥ (पृ १३७३)

सेवा थोरी मागनु बहुता ॥ महलु न पावै कहतो पहता ॥ (पृ ७३८)

कोटि मधे को विरला सेवकु होरि सगले बिउहारी ॥ (पृ ४६५)

हमारा ऐसा बाहरमुखी मानसिक 'धर्म' हमें माया में से निकालने की अपेक्षा, माया के 'भ्रम-भुलावों' में ही फँसा कर रखता है, और धर्म के असली उच्च-पवित्र मनोरथ से दूर लेकर जा रहा है ।

'धर्म' या 'मज़हब' के इन गलत निश्चयों और 'इस्तेमाल' को ही मानसिक 'भ्रम-भुलाव'

कहा जाता है ।

इन धार्मिक 'भ्रम-भुलावों' में से ही सारे अवगुण उत्पन्न होते हैं, जैसे कि - वैर, विरोध, नफरत, जलन, कुढ़न, निंदा, चुगली, रोष, शक, चिंता, तृष्णा, ईर्ष्या, द्वेष, तअस्सुब, बदला, झूठ, स्वार्थ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार एवं मैं-मेरी आदि ।

इन बाहरमुखी धर्मों के दिमागी दायरे में ही -

धर्म सथान

धार्मिक स्कूल-कॉलेज

धार्मिक प्रचार

धार्मिक लेखनियाँ

धार्मिक संस्थाएँ

धार्मिक डेरे

आते हैं, क्यों कि इन में बाहरमुखी दिमागी धार्मिक विद्या ही सीखी-सिखाई जाती है और 'आत्म-तत्-ज्ञान' या 'आत्मिक प्रकाश' अथवा 'नाम' के विषय में नाममात्र, ऊपरी सी, दिमागी व्याख्या ही होती है ।

इस लिए ऐसा बाहरमुखी धार्मिक प्रचार भी दिमागी मंडल तक सीमित रहता है और आत्म-प्रकाश के 'तत्-ज्ञान' तक इस की 'पहुँच' नहीं है ।

पड़हि मनमुख परु बिधि नही जाना ॥

नामु न बूझहि भरमि भुलाना ॥

(पृ १०३२)

बेद पड़हि हरि नामु न बूझाहि ॥
माइआ कारणि पड़ि पड़ि लूझाहि ॥

(पृ १०५०)

सिमृति सासल पड़हि पुराणा ॥

वादु वखाणहि ततु न जाणा ॥

(पृ १०३२)

पड़हि गुणाहि तूं बहुतु पुकारहि विणु बूझे तूं डूबि मुआ ॥ (पृ. ४३५)

दुखदायी और अफसोस की बात तो यह है कि जिस मानसिक 'भ्रम-भुलाव' में हम स्वयं गलतान हैं - उसी धार्मिक 'भ्रम-भुलाव' का ही प्रचार करके, आम भोली-भाली जनता को इन धार्मिक भुलाव में ही फँसाते जाते हैं, और उनको सही आत्मिक 'जीवन-सेध' से वंचित रखते हैं ।

कबीर माइ मूंडउ तिह गुरू की जा ते भरमु न जाइ ॥

आप डुबे चहु बेद माहि चेले दीए बहाइ ॥ (पृ १३६६-७०)

इस तरह बाहरमुखी धार्मिक 'भ्रम-भुलावों' में प्रवृत्त होकर हम अपनी असली 'आत्मिक जीवन' सेध से वंचित रहते हैं ।

दिमागी 'भ्रम-भुलावों' से, यह धार्मिक 'भ्रम-भुलाव' अति सबल और सूक्ष्म हैं, जिस कारण हमारे अंदर -

धार्मिक अहम

धार्मिक दिखलावा

धार्मिक पारवंड

धार्मिक ईर्ष्या

धार्मिक निंदा

धार्मिक अज्ञानता

धार्मिक तअस्सुख

धार्मिक घृणा

धार्मिक झगड़े

धार्मिक लड़ाईयाँ

बढ़ती जाती हैं और हम अपने असली 'आत्म-मार्ग' अथवा 'आत्म-प्रकाश' या 'नाम' से दूर जा रहे हैं ।

इस तरह -

- ‘धर्म’ को दिमागी दायरे तक सीमित रखना भी - भ्रम है ।
‘धर्म’ को ‘मायिकी जरूरतों के लिए
इस्तेमाल करना भी - भ्रम है ।
‘धर्म’ के द्वारा अकाल पुरुष के साथ
‘सौदेबाज़ी’ करना भी - भ्रम है ।
‘धर्म प्रचार’ को दिमागी ‘कला’ समझना भी - भ्रम है ।
‘धार्मिक ज्ञान’ को दिमागी वाद-विवाद का
विषय बनाना भी - भ्रम है ।
‘धार्मिक साधनों’ को आत्मिक ‘मंज़िल’ समझना भी - भ्रम है ।

‘तत्-ब्रह्म ज्ञान’ या ‘नाम-प्रकाश’, बरखो हुए गुरमुख प्यारों की संगति
और सेवा करते हुए अंतर आत्मा में अनुभव द्वारा ही हो सकता है ।

गुरमुखि सेवा थाइ पवै उनमनि ततु कमाहु ॥ (पृ ७८८)

गुरमुखि सेवा महली थाउ पाए ॥

गुरमुखि अंतर हरि नामु वसाए ॥ (पृ १६०)

मनि तनि पिआस अरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ ॥

संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ ॥ (पृ १३५)

संत कै संगि मिटिआ अहंकार ॥

दृसटि आवै सभु एकंकार ॥ (पृ १८६)

दइआल दामादरु गुरमुखि पाईऐ होरतु कितै न भाती जीउ ॥(पृ. ६८)

संत सहाई जीअ के भवजल तारणहार ॥

सभ ते ऊचे जाणीअहि नानक नाम पिआर ॥ (पृ ६२६)

गुरमुख सउ करि दोसती सतिगुर सउ लाइ चितु ॥

जंमण मरण का मूलु कटीऐ ताँ सुखु होवी मित ॥ (पृ १४२१)

संतसंगति सिउ मेलु भइआ हरि हरि नामि समाए राम ॥(पृ. ७७१)

(क्रमश.....)